# अनुभव के भेस में विचार - उपन्यास

## कृष्ण किशोर

'You make something through your invention that is not a representation but a whole new thing truer than anything true and alive, and you make it alive. That is why you write and for no other reason that you know of. But what about all the reasons that no-one knows.'

अर्नेस्ट हैमिंग्वे के एक संवाद से उद्धृत ये पंक्तियां मैंने हैमिंग्वे के घर में पढ़ी थीं। फ्लोरिडा प्रांत के Key West शहर में विश्व प्रसिद्ध लेखक अर्नेस्ट हैमिंग्वे का घर है। सरकार द्वारा सुरक्षित। मायेमी (Miami) से दो सौ मील दूर तक समुद्र को पुल से बांधा हुआ है यहाँ पहुँचने के लिए। बीच बीच में छोटे बड़े द्वीप आते हैं। मछुआरों की बस्तियां। Key West छोटा सा शहर है। यू.एस.ए. का अंतिम पश्चिमी छोर। इसके बाद समुद्र और उस पार क्यूबा। हैमिंग्वे का कई वर्ष का जीवन इस शहर और क्यूबा के बीच बंटा हुआ था। उनके क्लासिक लघु उपन्यास The Old Man and the Sea के अनुभवों की शुरुआत यहीं से हुई। अभी देर ही कितनी हुई है। 1961 तक वे हमारे बीच थे।

यह नयापन क्या है! यह सृष्टा होने का दम्भ क्या है। आखिर ऐसा कितना विस्तार है जीवन में जिस की इन्सान कल्पना कर सकता है, उसे जी भी सकता है और उसके आधार पर कुछ रच भी सकता है। साहसिकता अपने आप में स्त्रोत है नएपन का, नए अनुभवों और नई सोच का भी। यह नयापन, नए अनुभव और नई सोच तभी बाँटने लायक बनती है, सार्वभौमिक बनती है, यह Particular तभी Universal बनता है, जब उसे साधारण के धरातल पर स्थापित कर देने की दृष्टि, क्षमता, कल्पना और साहस हो। अनुभव एक ईकाई नहीं है जिसे एक घटना, स्थान या स्थिति से आंका जा सके। अनुभव एक जोड़ है कितने ही आन्तरिक और बाह्य दृष्टि सम्पन्न साक्ष्यों का। एक व्यक्ति के नयन नक्श में उस का अनुभव जगत लिखा रहता है। चक्षु साक्षी से मनसा साक्षी, और मनसा साक्षी से बुद्ध साक्षी तक की अनुभव यात्रा पहले लेखक स्वयं तय करता है और फिर उसे अपनी अलग अलग क्षमताओं से प्रकट करता है। बहुत कृतियां हैं जो इस नएपन का अनुभव पाठक को देती हैं। बहुत स्तरों पर। भाषा के स्तर पर, मानवीय सम्बन्धों के स्तर पर, समस्याओं के प्रति दृष्टि और सोच के स्तर पर। हर बड़ी कृति एक साहसिक प्रवेश होता है, किसी अगम्य या अगोचर में नहीं, उस लोकमानस में जहाँ सम्भावनाएँ ही सम्भावनाएँ हैं। हर गोचर के साथ अगोचर भी है। उसी अगोचर और अविदित को ही शायद हैमिंग्वे नया रचने की कला कहते हैं। हमारे यहाँ यह 'नया' प्रेमचन्द से ही शुरु हो गया था - समय के सर्वविदित अन्याय से साहसिक संवाद।

एक श्रृंखला तो है ही अच्छी कृतियों की, नए अनुभव और सोच से लैस कृतियों की। ऐसी कृतियां जो सार्वजनिक और सार्वभौम हैं। आज उन कृतियों से समय की कुछ दूरी पर बैठ कर लग सकता है कि उनमें अनुभव या सोच के स्तर पर खोट है, शुद्ध सोना नहीं है, कुछ तांबा पीतल मिला है वहाँ। लेकिन फिर भी उन की प्रेरणा क्या थी, दृष्टि क्या थी, मौलिक सोच क्या थी, यह देखने की अधिक ज़रूरत है। अनुभव की क्षीणता कितनी और कहां है, कृतियों में इन बातों का अन्दाज़ा लगाना आसान काम नहीं है। निर्णायक को स्वयं कृति का समकाय होना पड़ेगा - उसी कद का या उस से भी बड़ा। अपनी स्मृति को बहुत गहरा खोदना पड़ेगा।

अच्छी कृतियां एक स्मृति, एक विरासत के तौर पर पूरी जाति का हिस्सा बन जाती हैं। वे कृतियां नई सोच, नए विमर्शों और नए इतिहास को रचने में मदद करती हैं। वे स्वयं को देखने में हमारी बहुत मदद करती हैं। दमित स्मृतियां विस्फोट बन कर हमारी कृतियों में ज़ाहिर होती हैं और एक नई स्मृति को जन्म देती हैं। लोलिता और मादाम बावेरी को हम भूल ही नहीं पा रहे। हैरानी की बात है कि 2010 के नोबेल पुरस्कार विजेता मारियो वारगस योसा (Mario Vargas Llosa) पर मादाम बावेरी की स्मृति का इतना दबाव था कि उनका नवीनतम और अत्यन्त प्रभावशाली उपन्यास The Bad Girl (2007), मादाम बावेरी (1856) की ही पुनर्रचना है। लेकिन आज का संदर्भ वासना और अस्मिता को एक साथ खड़ा देखना चाहता है। मादाम बावेरी को एक नए मानसिक परिधान में देखना चाहता है। अपनी कामुक आकांक्षाओं को उद्दाम अस्मिता प्रदान करना चाहता है।

स्मृतिहीनता घटनाओं की आक्रामकता से बचाव का कवच ही नहीं, आने वाली वासना का एक निर्द्वन्द्व उद्गम भी है। यही नया मानसिक परिधान है जिसमें योसा की Bad Girl, फ्लॉबर (Flaubert) की मादाम बावेरी Madame Bovary से भिन्न हो जाती है। समाज अपने आप में नैतिक अनैतिक कोई मूल्य जैसे देता ही नहीं। बस जिन मूल्यों को हम जीते हैं, वही केवल नैतिक की नीति है।

किसी विचार में गहरी निष्ठा से जैसे बड़ी कृतियां लिखी गई हैं, विचारों के आग्रह से मुक्त हो कर भी बड़ी कृतियां लिखी गई हैं। प्रश्न विचार या विचार से मुक्ति का नहीं है। प्रश्न है अपने कथ्य में गहरी निष्ठा का, निष्कंप यथार्थ दृष्टि का, दूरदर्शी संवेदना का, अभिव्यक्ति के अविचल साहस का और अपनी स्मृतियों की खोज का।

जिन आर्थिक परिस्थितियों और शोषण से समाजवाद पैदा हुआ, उन से बिल्कुल अप्रभावित उसी समय और समाज में टाम्स हार्डी Tess और मेयर ऑफ़ केस्टरब्रिज जैसी रचनाएं लिख रहे थे। नितान्त आंचलिक, नितान्त प्रादेशिक। कुछ ही देर बाद डी.एच लारेंस समाजवाद से अछूते स्त्री पुरुष सम्बन्धों के समुद्र में हाथ पैर मार रहे थे। लेकिन वे किसी नारी विमर्श को जन्म नहीं दे सके। हमारे यहाँ भी प्रेमचन्द के बाद वह समाज और समय अतीत नहीं हुआ था। उस की ज़रूरतें वही थीं। लेकिन फिर भी जैनेन्द्र और अज्ञेय दूसरे विमर्शों में खो गए। किसी नज़रिए के तहत लिखने की माँग पूरी करना और किसी नज़रिए के प्रभाव में लिखना बिल्कुल अलग बातें हैं। मांग पूरी करने की कोशिशों ने बहुत छोटी रचनाएं दी। पिछले दशकों में उपन्यासों की भीड़ में से अच्छे उपन्यास अगर उंगलियों पर गिनने लगें तो कुछ उंगलियां खाली रह जायेंगी। और फिर अब तो उपन्यासिकाएं ही रह गई हैं। एक बैठक से भी कम में बैठ कर उन्हें पढ़ा और उन पर लिखा जा रहा है। अनुभव की प्रगाढ़ता से जन्मी यथार्थ-दृष्टि की अनुपस्थिति में वे कृतियां एक बैठक से आगे जाती भी नहीं।

◆◆

इतनी भीषण समस्याओं से ग्रस्त विश्व में संघर्षों का कोई अन्त नहीं। फिर किस जादुई प्रेरणा के विस्फोट में आज विश्व के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार गर्बियल गर्सिया मार्केस को अठारहवीं सदी के अन्त में प्रवेश करने की, वहां की सामाजिक स्थितियों, धार्मिक पाषाणिक प्राचीरों को भेदती हुई, एक पिघले लोहे की धार जैसी प्रेम कथा Of Love and Other Demons (1994) लिखने की वासना जागृत हुई। एक छत्तीस वर्ष के पादरी की बारह वर्ष की लड़की से प्रेम की त्रासद कथा। क्या स्त्रोत सिर्फ़ वही है जो मार्केस स्वयं बताते हैं। उपन्यास के प्राक्कथन में भी और एक संवाद में भी। वे कहते हैं कि यह कहानी दादी ने उन्हें सुनाई थी, जिसमें एक बारह साल की लड़की की रेबीज़ (Rabies) से मृत्यु के बाद उसके सुनहरे बाल और लम्बे होते चले गए। फिर अठारहवीं सदी की एक कब्र की खुदाई के दौरान एक लाल बालों वाली लड़की का शव मिलने पर इस कथा ने जन्म लिया, ऐसा भी मार्केस कहते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि यह बनाई हुई बात है। Love in the Time of Cholera के रिसर्च के दौरान कार्तेगेना के इतिहास में यह कहानी उन्हें सूझी थी।

नहीं, स्त्रोत सिर्फ़ यही नहीं। इन कलेवरों के ठीक नीचे, चेतना के नाभिस्थल के ठीक नीचे, यह स्त्रोत था जो इतनी देर बाद फूट पड़ा। एक समानांतर अस्तित्व, समुद्र के नीचे का ज्वालामुखी।

एक बारह वर्ष की लम्बे, सुनहरे बालों वाली लड़की Sierva Maria को एक आवारा कुत्ता काट गया। उस के माता पिता सागर किनारे किसी कैरेबियन देश में रहते हैं जो अंग्रेज़ों का उपनिवेश है। काले गुलाम हैं, गोरे शासक, पादरी, चर्चाधिकारी, बड़े भूपति, मारक्वीज़, वगैरह। उस समय का सत्तातन्त्र पूरी तरह चर्च द्वारा शासित और नियंत्रित है। राजनीति भी चर्च की सत्ता का ही हिस्सा है। मरिया खत्म होते हुए ज़मींदार परिवार की बेटी है, उस की नीम पागल माँ नशे की शिकार है। पिता ही बेटी की देखभाल का ज़िम्मेदार है। मरिया अपने काले गुलाम नौकरों चाकरों के बच्चों के साथ, उन की गन्दी गलियों में खेलकर बड़ी हुई है। उनकी छिछली भाषा, आदतें, छीना झपटी, झूठ बोलना वगैरह उस का स्वभाव बन गया है। एक दिन वह एक गुलाम नौकर के साथ अपने बारहवें जन्मदिन के लिए कुछ माला वगैरह खरीदने गई। बड़े बाज़ार से आगे दोनों एक स्लम की मण्डी में पहुँच गए। बंदरगाह के किनारे इस मंडी में अफ्रीकी देशों से गुलाम जहाज़ों में लाकर बेचे जाते थे। उस दिन गुलाम Discount पर बिक रहे थे। गिनी से एक जहाज़ तभी आया था। रास्ते में समुद्री हवा और खाने की वजह से गुलामों को बीमारी लग गई थी। इसीलिए सस्ते दामों सेल पर बिक रहे थे। तभी सुनहरे बालों वाली इस गोरी लड़की को कुत्ता काट गया। कुत्ता पागल है या नहीं, कुछ पक्का नहीं। इलाज, टोना टोटका, जड़ी बूटी - सब किया गया। पर पैर के टखने का ज़ख्म खराब होता चला गया। लड़की का स्वभाव भी खराब होता गया। आख़िर चर्च ने लड़की को अपनी शरण में लेने का फैसला किया। लड़की पूरी तरह शैतान के बस में है। चर्च की धार्मिक रीति नीति से, आध्यात्मिक जादुई तरीकों से उस के शरीर को शैतान से मुक्त कराया जाएगा। तब तक लड़की कान्वेन्ट ऑफ़ सेन्टा क्लारा के एक छोटे से सैल में बन्द। उस की खेल कूद, बाहर की आवारा ज़िन्दगी, आज़ादी - बिशप के एक ही फैसले से बन्द। मरिया का Exorcism द्वारा इलाज और क़ैद।

एक पादरी 36 वर्षीय केन्तानो डिलोरॉ को उसके निरीक्षण का काम सौंपा गया। पादरी अजीब आदमी था, चौदह घण्टे लाइब्रेरी में गुज़ारता था। बिशप का विशेष विश्वासपात्र और धार्मिक श्रृचाओं का विद्वान होते हुए भी अपनी विस्तृत पढ़ाई के कारण अंधविश्वास और धार्मिक कानून से परे वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी रखता था। सूर्यग्रहण को मात्र ईश्वरीय प्रकोप न मान कर गैलीलियो और उसके भी पहले असीरियन वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए सौर मण्डलीय सूत्रों का हवाला देने का साहस भी कभी कभी कर बैठता था। बिशप का मानना था कि गैलीलियो के पास हृदय और विश्वास की कमी थी, तभी उन्हें ईश्वरीय सत्यों का आभास नहीं हो पाता था। लेकिन पादरी डिलोरॉ अपनी कल्पना और आदिम वासनाओं की सघनता में क्या कुछ देख जाता है, बिशप को इस का अन्दाज़ा नहीं था। एक दिन बाईबल के प्रसंग पढ़ कर सुनाते हुए उसने बिशप को अपना सपना बताया - 'वह लड़की, एक खिड़की में बैठी है। खिड़की बाहर एक बर्फ़ के मैदान पर खुलती है। अंगूरों का गुच्छा उस के सामने रखा है। एक अंगूर तोड़ कर वह खाती है। लेकिन एक और अंगूर उस गुच्छे पर उग आता है। उसे गुच्छा समाप्त करने की जल्दी नहीं है। वह जानती है कि आखिरी अंगूर उस की ज़िन्दगी का आखिरी क्षण होगा।'

(अजीब बात यह है कि बर्फ से ढका यह वही Salamanca का मैदान हैं जहाँ सर्दी में तीन दिन बर्फ़ पड़ी थी और मेमने बर्फ़ में घुट कर मर गए थे।) सुन कर बिशप ने कहा - मरिया की ज़िम्मेवारी तुम ले लो। पादरी डिलोरॉ बिशप की बात टाल नहीं पाया। अपनी नियति को टाल नहीं पाया। उस त्रासदी को टाल नहीं पाया था जो उस के लिए सुरक्षित थी। पहले ही दिन मरिया के पाँव की त्वचा का संपर्क, उसकी उन्मुक्त श्वास लहरी, उसका अशरीरी सा आभास, पादरी डिलोरॉ के अस्तित्व को, उस की धर्मपारंगता को कुछ ही क्षणों में तृणमूल सहित बहा कर किस भीतरी धरती को अनावृत कर गया, उस का विश्लेषण केवल उन स्थितियों में है जिन्हें कुछ लोग नियति कह सकते हैं।

अगले दिन मरिया गुस्से से भर कर पादरी के मुंह पर थूकती रही। पादरी मरिया के चेहरे पर आँखें गड़ाए उस के थूकने की क्रिया से उत्तेजित होता रहा। वासना अपनी सहनशीलता में मरिया के क्रोध और उच्छिष्ट को ऊर्जा में बदलती रही। प्रेम अपनी सहनशीलता में कितना आत्महन्ता हो सकता है, उसी के वृहत् यथार्थ का एक लघुवृतान्त है यह अवस्थिति।

"Leave me alone," she said. "Don't touch me." He ignored her, and the girl loosed a sudden storm of spittle in his face. He persevered and offered the other cheek. Sierva Maria continued to spit at him. Again he turned his cheek, intoxicated by the gust of forbidden pleasure rising from his loins. He closed his eyes and prayed with all his soul while she continued to spit at him, her ferocity increasing with his pleasure, until she realized that her rage was useless.

उस दिन शाम अपने कमरे में जाकर पादरी ने अपने शरीर को लहुलूहान कर लिया था। शाम के खाने पर, प्रार्धना में उसे न पाकर बिशप हैरान था। पादरी अपने कमरे में खून और आंसुओं से लथ फर्श पर लेटा हुआ पाया गया। "It is the demon, Father, the most terrible of all." उसने बिशप को कहा।

त्रासदी का चौथा पहर संक्षिप्त भी होता है और अपनी यातना में बेहद उजागर भी। पादरी डिलोरॉ को चर्च ने निकाल दिया, एक कोढ़ियों के अस्पताल में सेवा के लिए उसे रख दिया गया। वहीं से रात को भाग कर, एक सुरंग के रास्ते मरिया के सैल में वह पहुँचता। मरिया का विरोध और ज़िद पादरी की पीड़ा के सामने टिक नहीं सका। एक सिपाही के प्रेमगीत पादरी मरिया को सुनाता था। उन्हीं में खोकर मरिया ने पूरी तरह पादरी को आत्मसात कर लिया था।

They had no more than a few moments of calm while they were together. They never tired of talking about the sorrows of love. They exhausted themselves in kisses, they wept burning tears as they declaimed lovers' verses, they sang into each other's ear, they writhed in quicksands of desire to the very limits of their strength: spent, but virgin.

एक रात पादरी का वहाँ आना पकड़ा गया। उसके बाद डिलोरॉ क्यों वापिस नहीं आया, मरिया को पता नहीं चला। उस का विछोह मरिया की कमनीयता सह नहीं पाई। एक सप्ताह बाद ही उस का शव सैल के फर्श पर पाया गया।

लगभग सवा सौ पृष्ठों के इस लघु उपन्यास में सामर्थ्य का जितना फैलाव है, वह उपन्यास की कथा का नहीं है, वह उस समय को पूर्णता में बाँधने की कला का है। स्थितियों को एक क्षणांश में बांध कर प्रस्तुत करने के जादू में है। सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक अन्धसत्ता के सामने सामूहिक बेबसी और समर्पण की उन अभिव्यक्तियों में है जो एक गहरे विश्वास के अहसास की तरह सघन होती हैं, प्रवंचनाओं की तरह बिखरी हुई नहीं होती। शब्द जैसे एक सीमित पूंजी हों, अधिक व्यय से सिर्फ़ अकिंचनता ही खरीदी जा सकती है।

कथ्य सिर्फ प्रेमकथा नहीं, सारा समय है। विस्तार केवल अर्थ का है, वृतांतों का नहीं। दृश्यों का नहीं। उन तमाम वर्णनों और स्थितियों का नहीं जो कथ्य से दूर ले जाते हैं। लघु उपन्यास लिखना एक जोखिम भरा काम है। लघुता केवल कलेवर की होती है, प्रभाव की नहीं। चरित्रों की संख्या उतनी ही कम या ज़्यादा हो सकती है जितनी समय और कथ्य की अनिवार्यता है। स्थितियां और घटनाएं भी कम या ज़्यादा हो सकती हैं। The Old Man and the Sea में स्थिति और घटना एक ही है। मार्केस के इस उपन्यास में घटनाओं के अम्बार हैं। हैमिंग्वे में समय की सीमा जैसे पहले से ही तय है। मार्केस में समय उपन्यासकार के हाथ में नहीं हैं, स्थितियों के हाथ में है। कितनी लम्बी यातना-यात्रा है, आभास के अतिरिक्त कुछ नहीं, लेकिन जिज्ञासाओं को शाँत करता हुआ एक निर्णायक तत्व हर स्थिति के भीतर ही कहीं छिपा है। वाक्य केवल शब्द पुंज न हो कर अर्थ छवियां हैं। छवियां इसलिए कि प्रत्येक शब्द स्थिति के प्रकाश में अपना अर्थ और प्रभाव ग्रहण करता है। छवियों की तरह ही प्रकाश की दिशा में प्रकट होता है। लेकिन शब्द और वाक्य शिलाओं की तरह स्थिर हैं। अपने स्थान से हिलाना शायद उस सर्जक के हाथ में भी नहीं जिसने उन्हें वहाँ रखा है। कई कई बार बदलने, उलटने, सुलटने के बाद, उन की निश्चितता स्थिर हो जाती है। हैमिंग्वे ने कहा था -

*"The Old Man and the Sea could have been over a thousand pages long and have every character in the village in it and all the processes of how they made their living, were born, educated, bore children etcetera…. I have tried to eliminate everything unnecessary to conveying experience to the reader so that after he or she has read something, it will become a part of his or her experience and seem actually to have happened....*

*I have had to read it over two hundred times."*

कथन की मूकता और वाचालता प्रभाव की निश्चित कड़ी नहीं हो सकती। मार्केस के Of Love and Other Demons उपन्यास में संवाद ही संवाद हैं। The Old Man and the Sea में अधिकतर मोनोलॉग ही हैं। लेकिन कहाँ कहाँ मुँह पर उंगली रख कर कोई पाठक किसी चरित्र को कह सकता है कि चुप रहो, बोलने की ज़रूरत नहीं। यही बस निर्णयात्मक है। कहीं कहीं उपन्यासों में मुँह पर उंगली रखने की स्थितियां ज़्यादा भी हो जाती हैं और मुखर भी। फालतू के संवाद, फालतू के विवरण, फालतू की स्थितियाँ, फालतू के वर्णन, पाठक को चैन से पढ़ने नहीं देते, कितना कुछ किसी कृति से निकाला जा सकता है, यह कौन निश्चित करेगा। इतना मर्मज्ञ भी हर पाठक नहीं होता। उस की मानसिकता उन क्षणों के जोड़ से नहीं बनी होती जो अनिवार्यता और सहजता को एक साथ देख सकें, गहनता की सरलता को पकड़ सकें। जो कल्पना और सृजन के उद्गम स्थल को धरती और आकाश की तरह अलग न समझें। जो कला के सौंदर्य और दर्शन से एक साथ अभिभूत हो सकें, जो संक्षिप्तता में सारे विस्तार पा सकें। यही अन्तर एक लेखक और दूसरे लेखक का भी है। एक लेखक भी उसी मानसिकता का शिकार हो सकता है जहाँ अतिरिक्तता को ऐश्वर्य की तरह भोगने का लालच बना रहता है। जहाँ सृजन नहीं, ह्रास ही विस्तार पाता है। जहाँ कल्पना का प्रयोग, एक रेडार की तरह अपने गन्तव्य पर पहुँचने का संक्षिप्त रास्ता ढूंढने के लिए नहीं होता। पाठक ऐसे उपन्यासों या अन्य कृतियों को चाहें तो कांट छांट कर आधा कर दें और पता भी न लगे कि कृति का क्या नुकसान हो गया।

आज कल लिखे जा रहे लघु उपन्यासों को ऐसे पाठकों का मिलना बहुत सुगम हो गया है। वे उपन्यास उनका कुछ नहीं बिगाड़ संवार सकते। हर अच्छे पाठक के हाथ में एक अदृश्य कलम होती है। उससे वह कांटता छांटता चलता है, अपना बचाव आसानी से कर लेता है। एक लम्बी या छोटी बैठक में लिखी हुई रचना को आधी लम्बी या छोटी बैठक में चाय की प्याली की तरह सुड़क कर एक तरफ़ रख देता है।

भाषा भी कुछ ऐसा ही उपक्रम है। छठी इन्द्रीय की तरह सारे वातावरण पर नज़र रखती हुई, एक वितान की तरह सारी रचना पर फैली रहती है भाषा। एक ऐसे चरित्र के रूप में उपस्थित रहती है, जो बाकी सब चरित्रों को उन का रंग वर्ण, नाक नक्श और प्रभाव प्रदान करता है। किसी रचना में भाषा का क्या रोल है, यह बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है। भाषाओं का आंचलिक होना या अंचल से बाहर की सामान्य भाषा होना केवल एक माध्यम निश्चित करता है, माध्यम की क्षमता नहीं। एक सशक्त रचनाकार अपनी भाषा से रचना को संघर्ष नहीं बनने देता।

पाठक को अपने निकट लाना या अपने से दूर छिटक देना बहुत कुछ भाषा के हाथ में है। मार्केस के इस लघु उपन्यास में पात्र धार्मिक विद्वान, मठाधीश, चिकित्सक, दार्शनिक, भूपति ही ज़्यादा हैं। भाषा इन सब स्तरों की एक स्वाभाविक भाषा है। लेकिन प्रभाव में ऐसी कि पाठक उसे आत्मसात करता हुआ चलता है। उस स्तर तक अपने आप को ले आने के सहज प्रयास में आनन्द अनुभव करता है। पाठक का सहज विस्तार रचना के अर्थ को पाठक के धरातल पर प्रतिष्ठित करता है। धरातल की ऊँच नीच समाप्त करने की क्षमता अगर भाषा में है तो कठिनता और सुगमता का कोई झगड़ा नहीं। कई उपन्यास कई दृष्टियों से अच्छे होते हुए भी इस लिए अच्छे नहीं हैं क्योंकि उन की भाषा लोकमानस को पास नहीं फटकने देती। यह दूरी पाठक की अक्षमता नहीं जो लेखक को किसी हद तक बरी कर सकती। Nathaniel Hawthorne कितनी सहज बात कहते हैं : Easy reading is damn hard writing.

3

तथ्य, वास्तव और यथार्थ क्या सब एक ही हैं? समय इन का अर्थ बांचने में कितना समर्थ है, समय से पहले कोई बता नहीं सकता। 'तथ्य' सब से ऊपरी धरातल पर दिखते हुए तन्तुओं जैसे होते हैं जिन्हें देखा, छुआ और परखा भी जा सकता है। कोई उन का विशेषज्ञ भी हो सकता है। 'वास्तव' उन तथ्यों तक पहुँचने का रास्ता जैसा है। कभी दिखता है, कभी नहीं दिखता। वास्तव में कौन क्या और कैसा है, वह तथ्यों द्वारा हमेशा जाना नहीं जा सकता। और 'यथार्थ' एक दार्शनिक पहलू है जो तथ्यों और वास्तविकताओं के सामाजिक या सामयिक जोड़ को, उस संज्ञान की रोशनी में परखता है जो स्थानीय हो कर भी वैश्विक हो सकते हैं।

तथ्य केवल स्थानों की पूर्तिमात्र होते हैं। जैसे चरित्रों के नाम, वर्ष, संख्या, घटनाएं तभी अपना अर्थ ग्रहण करते हैं जब वे पूरे दृश्य का हिस्सा बनते हैं। समय के यथार्थ का संदर्भ रचते हैं। बहुत से ऐसे उपन्यास हैं जहाँ तथ्यात्मक या वास्तविक कुछ भी नहीं। लेकिन दो सदियों पूर्व का समय, संस्थाएं, विश्वास, भय, साहस, धरती और आकाश, वासनाएं, इच्छाएं, जीवन और मृत्यु के अर्थ ऐसा इतिहास रचते हैं, ऐसी दृष्टि देते हैं कि हमें आज अपने जीवन के अर्थांशों को देखने समझने में मदद मिलती है। ताकि हम सिर्फ़ कायरों की तरह अपने समय में जीने के लिए, जो कुछ भी व्यवस्थाओं द्वारा हमें उपलब्ध है उसे ही स्वीकार करने के लिये बाध्य न रहें।

एक ऐसा ही और उपन्यास, अठारहवीं सदी के अन्त के अलग अलग जीवनार्थों को हमारे सामने असीमित सामर्थ्य के साथ रखता है, आज से पचास साल पहले 1959 में लिखा Chinua Achebe का Things Fall Apart। मार्केस का उपन्यास Love and Other Demons एक व्यक्ति की वासना का, समय और संस्थाओं की खोहों को भेदता हुआ यथार्थ है। अचेबी का उपन्यास एक जाति, कौम और देश की परम्परा, रीति और नीति के अस्त और उपनिवेश काल के उदय की मार्मिक कथा है। दोनों ही उपन्यास इतिहास नहीं, इतिहास का दर्शन हैं, समय का यथार्थ स्वरूप भी हैं।

भाषा की सहजता, कलेवर की लघुता और ऐतिहासिक यथार्थ का दस्तावेजी उपन्यास है नाईजीरीया के चिनुवा अचेबी का Things Fall Apart. करोड़ों की संख्या में इस उपन्यास की प्रतियां विश्व भर में बिखरी हुई हैं। सिर्फ़ अमरीका में ही एक लाख प्रति वर्ष की औसत से आज भी बिकती हैं। एक क्लासिक की हैसियत रखता है यह उपन्यास।

उत्तरपूर्वी नाईजीरिया के ईबो (1860) कबीले के लोगों का मनोबल तोड़ देने की इस कथा में क्या ऐसा है जो उसे इतना लोकप्रिय बनाता है। क्या लोग इस कृति के माध्यम से नाईजीरिया के कबीलाई धर्म, रस्मो रिवाज़ जानना चाहते हैं? उनकी अन्तः कथा और जीवन की झलकियां देखना चाहते हैं? ईसाई मिशन की नग्न धूर्तता का जायज़ा लेना चाहते हैं? किसी भी बड़ी कृति में विषयगत तथ्यात्मकता कोई ख़ास महत्त्व नहीं रखती। कोई भी समाज सभ्यता के कुल विकास की श्रृंखला में कहाँ जुड़ता है, अनजाने में इसी ऐतिहासिक यथार्थ को जानने को उत्सुक पाठक अपनी दूसरी जिज्ञासाएँ भी शाँत करता है। और जिज्ञासाएं हैं उन प्रेरणाओं के कार्यकारी रूप को दैनिक जीवन में देखना, जिन की वजह से जीवन इतना आकर्षक, रोमांचकारी या भदेस और घिनौना बन सकता है। अपने ही समाज को पूरी क्रूरता से परखना और उसके घिनौने रूप को दुनिया भर के सामने उघाड़ फेंकना और उसी के धीरे धीरे ह्रास और पतन को एक यातना की तरह सह कर पूरी निर्द्वन्द्वता से उस का बखान करना, ऐसी करुणा को जन्म देता है जो कभी कभी मानवीय क्रूरताओं के पक्ष में भी खड़ी होती है। इसी क्रूरता, उदारता और करुणा की आदिमता इस लघु उपन्यास को इतने बड़े स्तर पर स्थापित करती है।

ओकोन्क्वो इंबो (Igbo) कबीले का एक शक्तिशाली सदस्य है जिसकी वीरता और अन्य पौरुष गाथाओं से वह क्षेत्र गूँजता है। कबीले की एक औरत की हत्या पड़ोसी कबीले वाले कर डालते हैं। उस कबीले से युद्ध या मुआवज़ा ही समस्या का हल है। मुआवज़े में एक युवा स्त्री और लड़का उस कबीले से दे दिये गये, युद्ध टल गया। लड़का ओकोन्क्वो के घर रहने लगा उस का बेटा बन कर। औरत एक पुरुष को दे दी गई। तीन वर्ष तक लड़का (इकेमेफुना) उस के अपने बेटे से भी ज़्यादा अपना बन कर उसके घर रहा। एक दिन कबीले के Oracle (भविष्यवक्ता) ने घोषणा की कि इकेमेफुना की बलि किसी देवता को शाँत करने को दी जाएगी। अगली सुबह भीड़ के साथ लड़के को गाँव से बाहर ले जाया गया। उसे कुछ भी पता नहीं। अचानक कुल्हाड़ी उस के सिर पर पड़ती है। लड़का भाग कर अपने पिता समान ओकोन्क्वो के पास पहुँचता है। मुश्किल से चीखता हुआ - ये मुझे मार रहे हैं!

"My Father, they have killed me!" as he ran towards him. Dazed with fear, Okonkwo drew his machete and cut him down. He was afraid of being thought weak.

अपने ही बेटे समान लड़के को काट फेंका ताकि वह कायर न दिखे। एक और दुर्घटना में ओकोन्क्वो के हाथों अपने ही एक सदस्य की हत्या हो जाती है। अंजाने में किए गए अपराध को 'नारी अपराध' कहा जाता है। सज़ा भी कम। सात साल के लिए देस निकाला। साल साल बाद वापिस आने पर कबीला इंसाइं मिशनरियों द्वारा हथिया लिया गया था। एक सभा वह बुलाता है - War Council - जो इन मिशनरियों को खदेड़ दे। तभी कमिश्नर का एक दूत कुछ बन्दूकधारियों के साथ सभा को बरखास्त करने आ जाता है। ओकोन्क्वो उस दूत की हत्या कर देता है। कोई कुछ नहीं करेगा, कोई नहीं लड़ेगा - वह समझ गया। हताशा में पेड़ से लटक कर वह स्वयं को समाप्त कर लेता है।

कथा छोटे छोटे ब्यौरों में, दैनिक रीतियों में, कबीले के विश्वासों में, इन्सान की फितरत में, सैंकड़ों या शायद हज़ारों सालों की परम्पराओं के देखते देखते ही समाप्त होने में निहित है। जिन विश्वासों और परम्पराओं को हम धरती, समुद्र, आकाश से अधिक स्थाई मान कर जीते मरते रहते हैं, हम उन्हें बूढ़े माता पिता की तरह अपने लालचों में छोड़ कर बस निकल जाते हैं। बाहरी शक्तियां हमारे भीतरी लालचों और कायरता से अधिक धूर्त नहीं होती। 'सब कुछ बिखर गया' (Things Fall Apart) इसी बात को फिर कहती है। इस बार कहने वाला जादूगर चिनुवा अचेबी है।

4

इतिहास का स्वरूप जिस तरह से एक आतंक की स्मृति से निकल कर जनतांत्रिकता की तरफ़ बढ़ा है, उस से बेशुमार कृतियां विश्व भर में रची गई। हिन्दी में भी कई रचनाओं ने किसी और कोण से उस समय को देखा है यानी अपने आप को देखा है। अब वे कृतियां स्वयं इतिहास का ज़रूरी हिस्सा बन गई हैं। समय को जानने परखने का, स्मृतियों में प्रवेश करने का एक सघन माध्यम बन गई हैं। इन कृतियों ने समाजशास्त्रीय अध्ययनों को तथ्य इक्ट्ठा करने और उन तथ्यों को इन कृतियों के आधार पर परख कर आगे देख सकने का एक ज़रिया मात्र बना दिया है। राजसी, सामन्ती आतंक सिर से उठ जाने के बाद मुक्त हो कर हम अपने अतीत को किसी अन्य रूप में याद कर रहे हैं, देख रहे हैं। हमारी आंखें जैसे हमें वापिस मिल गई हों।

पूरी तरह राजनीतिक साहित्य लैटिन अमेरिका की परम्परा रही है, लेकिन इतिहास की अपनी राजनीति होती है। हम समझते हैं जो घट गया, वह तो हम जानते ही हैं। विडम्बना यही है कि वह भी हम नहीं जानते। एक शव को देखना व्यक्ति को जानना नहीं है। उसे जीवित करके उसके साथ संवाद स्थापित करना पड़ता है। अतीत के साथ यह संवाद जो कर पाते हैं, वही उस की आगामिता और प्रभाव को भी समझ सकते हैं। प्रजातन्त्र, सैनिक शक्ति, धार्मिक आतंक, पूंजी संचयन, अपराध और बहुत कुछ कैसे अलग अलग करके देखें या इन सब की सांझ को ही स्वीकार करने के लिए अभिशप्त रहें, इस का उत्तर शायद उन के पास हो जो इतिहास को अच्छी तरह समझते हैं। मारियो वारगस योसा का 1981 में लिखा उपन्यास The War of The End of the World एक ऐसी इतिहास कथा है जिससे ब्राज़ील कभी मुक्त ही नहीं हो पाया। जैसे आज हम बारबार 1857 की ओर मुँह उठा कर दौड़ते हैं और औंधे मुँह गिर कर वापिस आने का साहस बटोरते हैं, ठीक उसी तरह। एक इतिहास बिन्दु को गर्व से देखते हुए भी कितने संशयों से भर उठते हैं। उस समय में प्रवेश करते हुए यही धुंआ उठता है कि हममें से वे कौन लोग थे जो आज़ादी के लिए लड़ रहे थे, और कौन लोग थे जो गुलाम ही बने रहते, और अधिक यातनाएं सहने के लिए। आज भी निश्चित नहीं कि हम किसी मूल्य के लिए लड़ रहे थे या हमें कोई आतंक आगे की तरफ दौड़ा रहा था किसी मंज़िल के आभास के बगैर ही। कितने ही उपन्यास 1857 के समय को लेकर लिखे गए। इतिहास ग्रन्थ भी लिखे गए। लेकिन तथ्य जितने सपाट और सतही हैं, असलियत उतनी ही गहरी और पेचीदा है। उपन्यासों ने ही उस गहरी और पेचीदा असलियत को सामने लाने की कोशिश की है। कमलकांत त्रिपाठी के 'पाहीघर' और 'बेदखल' में दो महत्वपूर्ण समयांशों को जनपक्षधरता से उठाया गया है। 1857 का विद्रोह और अवध का किसान आन्दोलन। बाबा रामचन्द्र जैसे चरित्र को इतिहास वालों ने अनदेखा ही किया हुआ था। बाबा रामचन्द्र की 1920 में गिरफ़्तारी के समय लगभग 60,000 किसानों का उग्र प्रदर्शन हुआ था। उन पर ज़मीदारों ने चोरी का इलज़ाम लगा कर गिरफ़्तार करवाया था। राष्ट्रीय आन्दोलन के शहरी नेताओं ने उन का विरोध ही किया। यहां कुछ लोगों का रक्त धरती पर न गिर कर राख के किसी ढेर पर गिर कर बेरंग हो गया लगता है। Harold A. Gould अपने एक आख्यान (1997) में और K. Kumar : Peasants in Revolt (1984) में इस किसान आन्दोलन और बाबा के बारे में तर्कसंगत विवेचन करते हैं।

विश्व भर में इतिहास को लोगों के बीच से उठाने वाली कृतियां लिखी गई हैं। नायकत्व भी लोगों का है और हार जीत भी उनकी। Kenya की आज़ादी (ओहारू) पर लिखा गया अत्यन्त प्रभावशाली उपन्यास। Grain of Wheat (Ngugi wa Thiong'o) को African Classic कहा जाता है। 12 दिसम्बर 1963 को आज़ादी मिलने के पहले अंग्रेज़ों ने किनया में सात साल (1952 से 1959) का Emergency Rule थोप दिया था। ग्रामीण जीवन के उथल पुथल और आन्तरिक संघर्षों की मार्मिक कथा है यह। यहाँ भी व्यवस्था का पक्ष और विरोध उभर कर सामने आता है। असली बात इतिहास को प्रभुत्व से निकाल कर साधारण जनजीवन में स्थापित करने की कोशिश का है जो इन कृतियों में हुई है।

उन्नीसवीं सदी का अन्त ब्राज़ील के इतिहास का वैसा ही एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है जिस में सभी शक्तियां निर्णायक हो उठने की होड़ में अपनी अंतिम क्षमताओं को परखती हैं। 1889 में राजा Don Pedro II ने सिंहासन छोड़ दिया था। छोड़ने के पहले राजा ने देश के लाखों काले गुलामों को आज़ाद कर दिया था। आज़ाद हो कर गुलाम लोग बेरोज़गार हो गए। बहुतों ने चोरी, डकैती का पेशा अपना लिया। मध्ययुग की सारी अंधवृतियां, धार्मिक शक्तियां अभी पूरी तरह जीवित थीं। चर्च के पादरी जानते थे कि व्यवस्था का हिस्से बने बगैर चर्च की शक्ति का ह्रास होगा। लेकिन नए मूल्य भी सिर उठा रहे थे। व्यक्ति की आज़ादी, विचारों की पहचान, आर्थिक शोषण से मुक्ति, सामाजिक समानता के लिए छटपटाहट, सभी कुछ नए ब्राज़ीली समाज में एक सांझे अमरीकी भविष्य के सुनहरे चित्र का हिस्सा बन रहा था। लेकिन उन्नीसवीं सदी का अन्त वहाँ आसान नहीं था। उपनिवेशकाल का सारा कलुष अभी बाकी था। The War of the End of the World भी ऐसा ही एक संक्षिप्त इतिहास दंश है जिस को पहले कुन्या ने अपने अजर अमर उपन्यास Os Sertões (Rebellion in the Backlands-1902) में एक महाकाव्यात्मक आयाम दिया। Os Sertões ब्राज़ील की स्मृति पर लिखा अमिट आख्यान है। उसी इतिहास को पेरु के वारगस योसा ने एक बार फिर लगभग उसी गहनता से दोबारा सृजन किया है।

यहाँ भी मूल्यों का सुंधकना है। क्या ठीक है, क्या गलत है का धुंआ है। एक चमत्कारी साधु तीस हज़ार अनुयायियों के हकों के लिए प्रदेश की सरकार से लड़ता है। अन्त वही जो अपनी भयावहता में याद रखने और भूल जाने के बीच स्मृति में कहीं टंका रह जाता है। तीस हज़ार लोगों के शव सूरज की तपती रोशनी में गिद्धों के नोच खाने के लिए मैदानों में पड़े रहे। जिस अन्यायपूर्ण टैक्स को न देने की लड़ाई थी, उस में टैक्स देने वाला एक भी नहीं बचा। लेकिन राज्य वह लड़ाई जीत गया।

उपन्यास Os Sertões पर आधारित अपने उपन्यास The War of the End of the World के बारे में योसा का कहना है -

I didn't know anything about the war at Canudos, I'd never even heard of it. I started to research it, to read about it, and one of the first things I read in Portuguese was Os Sertões by Euclides da Cunha. It was one of the great revelations in my life as a reader, similar to reading Three Musketeers as a child, or War and Peace, Madame Bovary, and Moby-Dick as an adult. Truly a great book, a fundamental experience. I was absolutely stunned by it; it is one of the greatest works Latin America has produced. In other words, the man I truly owe for the existence of The War of the End of the World is Euclides da Cunha.

वारगस योसा का यह उपन्यास ब्राज़ील के उसी बहिया प्रान्त के सरताओ क्षेत्र में घटता है। इसी कथा को दोबारा कहता है। यह एक बंजर, कंटीला मरुस्थली, पिछड़ा हुआ इलाका है। सदी के अंतिम वर्षों में यहाँ एक साधु का आगमन हुआ। पतला, लम्बा, नीला चोगा, उलझे बाल, मोटे चमड़े के चरवाहों जैसे सैंडिल पहने। साधु के माध्यम से ब्राज़ील समाज के अन्तर्विरोधों की कथा उजागर होती है। एक प्रजातन्त्र है जो वास्तव में पुलिस और सेना की सुरक्षा में किसी अधिनायक से कम नहीं, जैसे सभी प्रजातन्त्र होते हैं।

उपन्यास में एक अत्यन्त प्रभावशाली चरित्र गैलीलियो गॉल उन चरित्रों में से है जो किसी ख़ास समय और स्थिति में उजागर होते हैं। समय को उनका इन्तज़ार रहता है। देश की सीमा और लोगों का अपना पराया होना जिन के लिए महत्त्व नहीं रखता। कई देशों की खाक छानता हुआ वह ब्राज़ील पहुँचता है फ्रांस के एक क्रांति युद्ध में भाग लेने के बाद। समाजवाद मार्क्स का चिन्तन भले ही हो, लेकिन जैसे गॉल ने क्रांति के आदर्श को आत्मसात किया है, विचार की सारी शक्ति उसी में है। धर्म के विरुद्ध, पूंजी के केंद्रीकरण के विरुद्ध, राज्य सत्ता के विरुद्ध अपने आदर्श को वह मार्क्सवाद से सीमित नहीं होने देता। वह साधु एंटोनियो कौंसेलेरो के साथ मिल कर सत्ता का, सेना का विरोध करता है। एक कट्टर धार्मिक, प्रजातन्त्र विरोधी साधु का साथ देता है। क्योंकि साधु द्वारा स्थापित व्यवस्था, जीवन जीने का तरीका, बिना सरकार, बिना धन, बिना कानून द्वारा चलाए जाने वाला समाज, इस क्रांतिकारी के अपने मूल्यों से अधिक मेल खाता है। विचारों की सैद्धांतिकी कहीं आड़े नहीं आती। इस धर्मयुद्ध में भी वह सच्ची क्रांति देखता है।

ये दोनों अलग अलग व्यक्तित्व अपनी विचित्रता और मुद्रा में एक जैसे हैं। प्रभाव में एक जैसे नहीं लेकिन अपने कर्म की ज़िद में एक से। अंत साधु का होता है, गॉल का नहीं। उस का रोल शायद अभी बाकी है।

साधु बाईबल के किसी मिथकीय चरित्र का निकट आभास लिए हुए है। कहीं स्वयं हजरत ईसा की तरह लोगों के लिए रहस्यात्मक भी है और रोशनी की तरह उजागर भी। यह एंटोनियो कौंसेलेरो, जिसे बहिया के लोग काऊंसलर के नाम से पुकारते हैं, एक गढ़ा हुआ नहीं, वास्तविक चरित्र है। इतिहास का सजीव पात्र, एक सच्ची त्रासदी का नायक। उस का पिछला जीवन बचपन की क्रूरताओं, डरों, युवावस्था के दुःस्वप्नों, घर गृहस्थी की बेवफाईओं और दुष्कर षड़यंत्रों की अनवरत कहानी है। बाद की लम्बी निरुद्देश्य भटकन, यात्राएं, लोगों की निराशाएं, अकाल, भुखमरी, बीमारी देखता हुआ यह व्यक्ति इस स्थिरता को प्राप्त होता है जिसका नाम काऊंसलर है। उन पिछड़े हुए लोगों के अन्तस को एक कलेवर मिला साधु के रूप में। वे लोग किन्हीं रस्मोरिवाज़ों को मानने वाले नहीं थे। बिना शादी ब्याह के वे साथ रहते थे, बिना नाम के बच्चों का कभी कभी नामकरण हो जाता था। मुख्य चर्च ने उन्हें लगभग छोड़ रखा था। काऊंसलर की उम्र का अंदाज़ा लगाना मुश्किल धा। उस की अविचल गंभीरता ऐसी थी कि लोग चुपचाप उस का अनुसरण करते उसके काम में हाथ बंटाते। टूटे फूटे पुराने खण्डहर चर्चों की वह मुरम्मत करता और साफ़ सुथरे पूजा स्थलों में बदलने की कोशिश करता। भूखे, बीमार परिवारों की मदद करता, ईश्वर का अहसास दिलाता। पहले उसके साथ कुछ लोग होते थे। धीरे-धीरे एक काफ़िला बनता चला गया। हर काम धन्धे के लोग उठ कर, अपना सब कुछ छोड़ कर उसके साथ चलने लगे। चोर, डाकू, अपराधी, नए आज़ाद हुए बेरोज़गार गुलाम, मज़दूर, किसान, औरतें, बच्चे, पूरे परिवार उस के साथ चलने लगे।

'What port was the counsellor heading for with this endless journeying? No one asked him, nor did he say, and probably he didn't know.'

आख़िर उसने अपना एक कबीला एक ख़ाली पड़े हुए मैदान पर बसा लिया। यह मैदान एक भूपति (Baron) की संपति धा। हज़ारों लोग वहाँ रहने लगे। एक यूटोपिया था यह। उसका अपना तरीका, कानून कायदे थे। जो प्रजातन्त्र सेना के आधार पर टिका हो, उसे वह नहीं मानता था। काम के बदले काम ही उसकी अवधारणा थी। धन और उसके प्रयोग को उसने सीमित कर दिया। जो चर्च उस अधिनायकवादी प्रजातन्त्र का समर्थन करे, उसे वह नहीं मानता था। ईश्वरीय न्याय अवश्य होता है। ऐसा मानना था उसका। संसार का अंत निकट है, इसलिए न्याय के लिए तैयार रहो। चर्च ने उस के खिलाफ़ मोर्चा खोल दिया।

पादरियों को आभास था कि अपना ही चर्च स्थापित करने वाला साधु कभी भी तलवार उठा सकता है। कितने ही क्रामवेल उन्हें याद आ जाते। किंग चार्ल्स का कटा सिर उनकी आँखों के आगे घूम जाता। सरकार को न मानने के जुर्म में वह सारा क्षेत्र बागी करार दे दिया गया। चर्च के पादरियों और देश की सरकार का डर सच्चा धा, जैसे हमारे अधिकतर डर सच्चे होते हैं।

काउंसलर लड़ाई के लिए तैयार था। उन लोगों के लिए विश्व का अन्त और न्याय का युद्ध निश्चित था। सेना के कई आक्रमण Backlands के उन लोगों ने असफल कर दिए। सैंकड़ों सैनिक मारे गए। केवल अंत ही अंतिम है। लेकिन सब कुछ सेना के एक भयानक आक्रमण में खत्म हो गया। एक भी व्यक्ति, बच्चा, औरत, कोई नहीं बचा। प्रजातन्त्र और सेना की इस जीत ने यह यूटोपिया समाप्त कर दिया। यह कथा सुनने में कितनी काल्पनिक, असत्य की हद तक अविश्वसनीय लगती हो, लेकिन बिल्कुल सच है। ब्राज़ील के इतिहास का इतने निकटस्थ समय का हिस्सा है। साधु अंतोनियों के युद्ध में मारे जाने के बाद शव का एक चित्र भी उपलब्ध है।

योसा इस उपन्यास को अपनी सब से बड़ी उपलब्धि मानते हैं। लेटिन अमेरिका में मारियो वारगस योसा भी गर्सिया मार्केस जैसे ही प्रतिष्ठित लेखक हैं। उन्होंने मार्केस के जादुई यथार्थ से हटकर बाल्ज़ाक के यथार्थ, हैनरी जेम्स और जॉयस के प्रतिसंसार के मिश्रण को अपने शिल्प और आख्यान का आधार बनाया है।

5

अन्याय के विरुद्ध किसी भी युद्ध को धर्म युद्ध कह दिया जा सकता है। लेकिन धर्म युद्ध और सामान्य दैनिक जीवन में धर्म की स्थिति हर जगह विपरीतार्थक है। भारत में जिस तरह धर्म लोगों को एक दूसरे से अलग करता है, उसकी मिसाल किसी और समाज में शायद नहीं मिलती। एक दूसरे की दैनिक ज़िन्दगी, रस्मो रिवाज़, तीज त्योहार, शादी ब्याह, वगैरह में अलगाव ऐसा है जैसे इन्सान की दो अलग अलग नस्लें हों। जैसे शारीरिक बुनावट का कोई अन्तर हो। मुद्दत तक उर्दू भाषा ने हमें जोड़ कर रखा है। छोटे छोटे कस्बों में भी मुशायरों का माहौल अभी तक लोगों को याद है। ग़ज़लों, कव्वालियों की रिवायत एक तबके की नहीं, कौमी रिवायत है। वो भी ज़ेहन में अभी तक महफ़ूज़ है। उसके उसी तरह न रहने का दर्द भी महफ़ूज़ है। बंटवारे के दंगों का ज़ख्म भर भी सकता था, अगर सियासत वाले ऐसा होने देते। ज़ुबान, पहनावा, दिखावा और मज़हब की इस किलेबन्दी ने हम जैसे कितनों को अन्दर से बेदरोदीवार कर दिया है। बेघर।

पिछले साल निज़ामुद्दीन औलिया के उर्स के अवसर पर मैं शाम को दरगाह पर गया। कव्वालियां चल रही थीं। सैंकड़ों लोग ज़मीन पर बैठे सुन रहे थे। मेरे लिबास और व्यवहार के तरीके से ज़ाहिर था कि मैं मुस्लिम नहीं हूँ। खैर, वहाँ इस बात का कोई फ़र्क नहीं पड़ता। बहुत नज़र घुमाई। उस बड़ी भीड़ में एक भी ग़ैर मुस्लिम नहीं दिखा। वहीं ग़ालिब एकेडमी में मुशायरा चल रहा था। गुलज़ार देहलवी साहब सदारत कर रहे थे। उन की शायरी से ज़्यादा उनका अन्दाज़ेबयां समां बांधता है। अब इस उम्र में भी वे किसी नौजवान को अपनी अदाओं से मात देते हैं। वही सा लिबास और गुलाब का फूल में एक मुद्दत से देखता आया हूँ। बेकल उत्साही साहब ने भी मुशायरे में शिरकत करना थी। उनकी इन्तज़ार में कुछ देर मैं बैठा रहा। वो नहीं आ सके थे। खैर, सारे हाल में कई बार नज़र घुमाई। वहाँ भी गैर मुस्लिम कोई नहीं लगा। हो सकता है, मैं देख न पाया हूँ। लेकिन मुझे ऐसा ही लगा। इतने बड़े जश्न में सिर्फ़ एक ही धर्म के लोग। सदियों से साथ रहते हुए भी इतना अलगाव। किसी ग़ैर हिन्दुस्तानी को अगर कुछ पता न हो तो उसे यह हकीकत बौखला तो सकती है, समझ नहीं आ सकती। सिर्फ़ हिन्दू, मुस्लिम या बाकी तबकों के स्पजमे या सम्पन्न लोग ही कहीं कहीं आपस में साथ दिखते हैं। कुछ स्मृतियां हैं जो मिटती ही नहीं, बल्कि उन में कुछ और स्मृतियां जुड़ जाती हैं। राजनीति वाले इस कद्र किसी बात का फायदा उठा सकते हैं, यह उसकी एक घिनौनी मिसाल है। लेकिन साहित्य वालों को इस खाई को पाटने की ज़िम्मेवारी इस तरह लेनी पड़ेगी कि किसी एक तबके की बात करते हुए भी ऐसा लगे कि बाकी सब वहाँ हैं।

अलग अलग वर्गों, तबकों, मज़हबों, विमर्शों, हाशियों को लेकर हमारी भाषाओं में बहुत उपन्यास लिखे गए हैं। उन में बहुत कम ऐसे हैं जो किसी ख़ास वर्ग, घटक, विमर्श या हाशिए का होते हुए भी सबका हो। पढ़ते हुए लगे कि मैं भी वहाँ हूँ। बल्कि 'वहाँ हूँ' कि जगह 'वहीं हूँ' लगे। जहाँ लगे कि मैं यहाँ नहीं हूँ, दूसरे ही दूसरे हैं, वहीं हमारी चेष्टा साहित्य मात्र नहीं रह जायेगी। कुछ और होकर रह जायेगी - विमर्श मात्र, मुद्दा मात्र, हाशिया मात्र और अन्ततः अविचार मात्र।

मुद्राएं भी सहज नहीं रही, आक्रामक हो उठी हैं। संवेदनाओं की खिड़कियां दिशा देख कर खुलती, बन्द होती हैं। ऐसा कोई मुद्दा नहीं रहा जो सब का हो, मुद्दे वर्गों ने हथिया लिए हैं। यानी कुछ भी मुक्त रूप से केवल मानवीय होकर नहीं देखा जा रहा।

साहित्य को चौखटे तोड़ने हैं। संवेदनाओं को, करुणा को - मुद्दों के बाड़े से बाहर लाना है। बात किसी की भी हो, लेकिन दृष्टि वही कि सांझ सब की है। कविता, कहानी, उपन्यास या कोई और विधा किसी विमर्श, किसी मुद्दे, किसी विचार पर केंद्रित हो, लेकिन ऐसे कि सारा इन्सानी समाज उस में शामिल है।

अभी हाल ही में अब्दुल बिसमिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास पढ़ा। देर से पढ़ा। इस के बाद उनके और भी उपन्यास आए हैं। बुनकरों-जुलाहों पर केन्द्रित होते हुए भी यह सभी मानवीय पक्षों को उनके माध्यम से सामने लाता है। दैनिक ज़िन्दगी में बुनकरों की ज़िन्दगी के संघर्षों का ताना बाना है। करघे, बीन, कतानों के संघर्ष के माध्यम से इन्सानी संघर्ष को सामने लाया गया है। यह नहीं लगता कि सिर्फ़ मुसलमान होने की वजह से उन की ज़िन्दगी में सारे संघर्ष हैं। गरीब मज़दूर, साधनहीन कारीगर होना ही उन का संघर्ष है। बैंक उन के नहीं, हाट बाज़ार उन का नहीं। 'जहाँ कुछ लोग मजूर से बानीवाले, बानीवाले से बिक्री वाले और बिक्रीवाले से गिरस्ता में बदलते जा रहे थे, वहीं मतीन बानी पर बिनते बिनते मजूर हो गया था।' ज़्यादातर का संघर्ष क्या यही नहीं है आज हमारे साधनहीनों के कूड़ेदानों सरीखे समाज में। धर्म भी है जैसे सारे धर्म होते हैं। सिर्फ़ मस्जिद कह देने से धर्म की कर्कशता मन्दिर से कम या ज़्यादा नहीं हो जाती। 'लतीफ़ मस्जिद के सामने पहुंचता है और लिखवाता है ग्यारह रुपया। लिखने वाले सज्जन उसे घूर कर देखते हैं और लाऊडस्पीकर पर बग़ैर ऐलान किये ही उसके हाथ से दस का नोट और एक का सिक्का लेकर सामने रखे बाक्स में डाल देते हैं।' सौ रुपये होते तो ऐलान हो जाता। धर्म तो यही है। धर्म यह भी है कि लतीफ़ और कमरून का तलाक तो हुआ है एक झटके में लेकिन मन का लम्बा संघर्ष और बदलाव किसी अपमान के बिना स्वीकार नहीं। वापिस आने के लिए कमरून को हलाला की रस्म अदा करनी ही होगी। यानी किसी और मर्द के साथ एक रात रहना होगा। पंचायत वही है अधिकारों से लैस, लेकिन आज लोगों के कण्ठ में आवाज़ भी है और हलाला को दरतरफ़ करने का साहस भी। रस्मों, लिबासों, खान पान, तीज त्योहार, मेले ठेले, दुख दर्द, सभी में ठेठ मुस्लिम होने पर भी यह कथा 'दूसरे' को अलग करती महसूस नहीं होती। यह मानवीय विरासत और विस्तृत सरोकारों से लैस दृष्टि का ही परिणाम है।

अमीर चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, सभी शोषक हैं। सेठ गजाधर, कामता प्रसाद, हाज़ी अमीरुल्ला सब शोषक हैं।

'...फिर वह कहां जाए! सरकारी को-आपरेटिव की भी यही हालत है। किसी गिरस्ता की गद्दी पर जाना भी फिजूल है। हर जगह गिद्ध बैठे हैं। गद्दी गद्दी पर, दूकान दूकान पर!'

उपन्यास में मुहर्रम ताज़िये, दशहरा होली, दुर्गा पूजा सभी कुछ है। दुर्गा पूजा पर दंगा फसाद भी है। होली पर कोई ख़ास झगड़ा न होने की राहत भी है। गोल घर का हाट बाज़ार, दलाली, कटौती सभी कुछ है लेकिन वही जो सारे हिन्दुस्तान में है अमीर ग़रीब की दो अलग दुनिया। रऊफ़ चाचा, नजबुनिया, लतीफ़, मतीन, अलीमुन, अल्ताफ़, बशीर मियां, रामभजन, नरेश, इकबाल वगैरह से भरा पूरा माहौल है। आक्रामकता न मज़हब की है, न तबके की। सिर्फ़ इन्सानी संघर्ष है जो इस उपन्यास में जुलाहों को माध्यम बनाता है। सरकारी सुविधाएं, आयोजन, सब के सब सिर्फ़ साधन सम्पन्नों के लिए हैं। याद रह जाने वाले ग़रीबों के उत्सव और खुशियां भी हैं। शुद्ध उत्सव, हिलोर, तरंग छोटे छोटे लोक गीत जो धन से न खरीदे जा सकते हैं, न बेचे जा सकते हैं। परिवारों के भीतर के चित्र इतने विश्वसनीय हैं कि लगता है उनके साथ रह आये हों। ये बुनकर सिर्फ मज़दूर नहीं हैं, कलाकार भी हैं। लेकिन वे अपनी दुराशाओं और हताशाओं में अपनी औरतों के साथ बदसलूकी के खुरदरेपन से बचे हुए नहीं है। फिर भी जो बात सारे उपन्यास पर छाई हुई है, वह है मतीन और फिर उस के बेटे इकबाल की लगातार नाइन्साफ़ी से लड़ने की बेचैनी।

'सिर्फ़ करघों की मदद से तकरीबन पच्चीस तीस करोड़ रुपयों की रेशमी साड़ियां हर साल आप लोगों की मेहनत से तैयार होती हैं। पर आपको क्या मिलता है बदले में? सिर्फ़ एक लुंगी! भैंस का गोश्त! और नंग धड़ंग जाहिल बच्चे! टी.बी. की बीमारी से छटपटाती हुई औरतें ...!'

बेचैनी, साहसिक कोशिश, संघर्ष की तैयारी, धरने, अनशन सब की सब चमकदार लकीरें हैं। यहाँ खाली कुछ नहीं। सब कुछ भरा भरा है। एक दम से हीरो या हीरोनुमा कोई नहीं। सब का सांझा दुखदर्द ही नायक है। सब की सहनशक्ति ही कथ्य भी है और कथन भी है जीवन का। संघर्ष की इच्छा ही वातावरण का हवा पानी है जो बचाए रखता हे। यानी स्मृति में अटक जाने के लिए कुल मिला कर सब कुछ है। अलग से बहुत कम।

मुम्बई के मुस्लिम समाज को लेकर अंग्रेज़ी में लिखने वाले युवा लेखक अल्ताफ़ टायरवाला ने एक उपन्यास दिया है - 'No God In Sight'। हिन्दू राष्ट्रवादी शिवसेना के दबाव में वहाँ के मुस्लिम मध्यवर्गीय जीवन का काफ़ी वास्तिवक चित्रण हे यहाँ।

एक तरह से यह उपन्यास भारत की मध्यवर्गीय सम्पन्नता और छवि का आलोचनात्मक नकार भी है। लेकिन असल बात वही खटकती है कि इस नकार में भी हम सब शामिल होना चाहते हैं। सामुदायिक अलगाव का अनुभव हमारी कुल सामाजिक मानसिकता का हिस्सा बन कर, किसी लोकविमर्श की तरह अगर प्रस्तुत हो तो दीवारें कुछ नीची हो सकती हैं, एक दूसरे के आँगन में झांक कर देखा जा सकता है। एक और मानसिकता है जो अल्ताफ़ टायरवाला को आज भी ग्रस्त किए हुए है। जो भारत से बाहर रह कर भारत के बारे में लिखते हैं, एक तरह से उन पर टिप्पणी है यह। "मैं First World की सुविधाओं में रह कर Third World के बारे में नहीं लिख सकता।" दूसरे लेखक हैं जो कहते हैं कि आज कहीं भी रह कर कहीं के बारे में लिखा जा सकता है। दोनों ही बातें सीमित तथ्य हैं, यथार्थ तो बिल्कुल नहीं। अल्ताफ़ साहब को शायद मालूम नहीं कि पिछले वर्ष ही एक लाख साठ हज़ार भारतीय जो यू.एस.ए. के स्थाई नागरिक थे, वापिस भारत चले गए। ये पढ़े लिखे लोग वहाँ अपना भविष्य भी देखते हैं और अपने घर वापसी भी। बहरहाल No God in Sight उपन्यास में मुम्बई के मुस्लिम समाज का चित्रण विश्वसनीय होते हुए भी अधूरा है, लोकमानस से बहुत दूर। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' एक निश्चित समुदाय पर केंद्रित होते हुए भी हमारे सब के बहुत करीब है।

आज भारत में रहकर अंग्रेज़ी में लिखने वालों की पूरी युवा पीढ़ी है जो पिछली पीढ़ी की परम्परा और संस्कृति से मुक्त, आज के जीवन को एक अलग से टुकड़े के रूप में चित्रित कर रहे हैं। ज़ाहिर है, ऐसा लेखन हमारी आज की पीढ़ी की उन्मुक्तता को भी पूरी तरह चित्रित नहीं कर सकता। घर से बाहर के जीवन को, घर के भीतर से काट कर देखने का ख़तरा वही है कि हम उन वर्जनाओं और कुण्ठाओं को नज़रअन्दाज़ कर रहे हैं जिन की वजह से हम अपनी आज़ादी को भी पूरी तरह भोग नहीं सकते। आज के वर्कप्लेस पर मानसिक दबाव सिर्फ़ काम का दबाव नहीं है। दोहरी ज़िन्दगी जीने का दबाव है। मुम्बई और दिल्ली जैसे शहरों की बात अलग है। वे अपना समाज स्वयं है, वहाँ के दबाव, अन्तर्विरोध भी अलग हैं।

चेतन भगत का उपन्यास One Night @ The Call Center कुछ समय पहले आया है। सुना है एक महीने में उस की एक लाख प्रतियां बिक गईं। छः घटना-परिस्थितियां हैं जो उपन्यास रचती हैं। रेल के डिब्बे में एक लड़की लेखक को यह कहानियां सुनाती है लेकिन पहले लेखक से वायदा लेती है कि वह उस पर ही उपन्यास आधारित करेगा। सो उस पर ही उपन्यास आधारित है। एक कहानी : Call Center का एक Employee डी.जे. बन कर रेडियो कार्यक्रम में एक व्यक्ति को पुरस्कार पाने की सूचना देता हे। पुरस्कार फूलों का बुके है और एक संदेश; जो भी संदेश वे जिसे भी भेजना चाहें। पुरुष यह फूल और संदेश अपनी प्रेमिका को भेजता है। उस पुरुष की पत्नी भी डी.जे. के साथ बैठी सुन रही है। गृहयुद्ध शुरु हो गया। ऐसी ही घटनाएं हैं। एक रात में ऐसी ही पांच-छः परिस्थितियों का चित्रण है। कहीं भी पांच छः युवक युवतियों की गपशप रिकार्ड करने पर ऐसा उपन्यास बन सकता है। लेकिन एक लाख प्रतियां बिकना हमारी शंकाओं को गलत साबित करता है। पाठक नहीं हैं, गलत शंका है। कहना चाहिए, Call Center जैसे उपन्यास नहीं हैं जो रातों रात उठ जाएं। ऐसे उपन्यास की एक माह में इतनी प्रतियां बिकना हमें कहां ले जा रहा है।

अंग्रेज़ी में लिखने वाले भारतीयों में सबसे अधिक सशक्त हस्ताक्षर राना दास गुप्ता हैं जो आजकल शायद दिल्ली में रहते हैं। इस से पहले वह कई देशों में रह चुके हैं। उनके दोनों उपन्यास 'Tokyo Cancelled' और 'Solo' बहुत प्रशंसित हुए। Solo उपन्यास लगभग एक सदी की कहानी कह जाता है। लगभग सौ साल की उम्र वाले उलरिक नाम के एक बूढ़े Bulgarian की दो हिस्सों में जीवन कथा है। दोनों हिस्सों में ही असफलताओं के अर्थ खोजने और सम्बन्धों की अस्पष्टता को रेखांकित करने का प्रयास है। कौशल है कल्पनाशीलता का। दूसरे भाग में उलरिक के अन्धा होने के बाद दिवास्वप्नों द्वारा देखा गया जीवन पहले भोगे गए जीवन से कहीं अधिक सार्थक भी है और उन वास्तविकताओं की खोज है जिन्हें व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में पा ही नहीं सकता। एक कठिन पहेली को सुलझाने का प्रयत्न हो जैसे यह उपन्यास। कितनी ही संभावनाओं को खोलता हुआ। लेकिन दुखद और लज्जाजनक बात है कि यहां भी अंग्रेज़ी में लिखने वाले भारतीयों की वही कुण्ठा और हीन भावना सामने आती है कि भारत में सब कुछ संकुचित है और भारतीय होने से अनुभव का दायरा कम हो जाता है।

राना दास के ही शब्दों में 'The idea that you have an Indian name and live in Delhi and so will write about this and this does not, for me, set up particularly exciting expectations. It assumes a narrower consciousness, a narrower sense of history and geography and a much narrower inner life than one would expect of someone who lives, say, in Newyork.' इन सब भारत में रह कर अंग्रेज़ी में लिखने वालों को भारतीय जीवन का विस्तार खुली आंखों देखने की ज़रूरत है।

हमारी भाषा में मध्यवर्ग की अन्धी दौड़, मूल्यहीनता और हताशा को लेकर कई अच्छी कृतियां आई हैं। संजय कुंदन का 'टूटने के बाद' भी इन्हीं में से एक है। कई स्तरों पर मन को छू जाने वाला उपन्यास है यह। वही सारे अनुभव हैं जिन से हम परिचित हैं और इसीलिए उनको रुक कर देखने लायक नहीं समझते। ऐसे ही कुछ पास से गुज़रते हुए क्षणों को रुक कर देखने लायक बनाया है संजय कुंदन ने। शिल्प और कथानक की सहजता कई लोगों को सपाटता का आभास भी दे सकती है। इतने अधिक सरलीकरण की लोगों को आदत ही नहीं रही। एक सादगी और सच्चाई है जो प्रभावित करती है।

लगभग सभी के जीवन में घटने वाली स्थितियां, उनकी परिस्थितियों से ही पैदा होती हैं। लेकिन हैरानी तब होती है कि एक ही परिस्थिति में जीने वाले वाले लोग कितने अलग हो सकते हैं। आखिर कितनी दिशाएं हैं इस जीवन की। वही चीज़ों के पीछे भागना या उस पीछे भागने पर हैरान होना, उदास होना और छोड़ जाना। वासनाएं भी जब तक स्वीकृत हैं, तभी तक अलंकृत हैं, सर्वोपरि हैं। अस्वीकृत होने पर शरणागतता है, टूटना है। लेकिन ऐसा भी है कि हमारा अपना एक भीतरी प्रकाश है जिसमें हम जीते हैं। अन्धेरों को साफ़ साफ़ देखते हैं और किसी अन्धेरे से समझौता नहीं करते। वासनाओं को शरण नहीं, वासनाओं द्वारा टूटे हुओं को भी शरण नहीं। ऐसी ही कठोरता है विमला की जो अनायास ही हमारे स्त्री प्रश्नों का उत्तर अपने प्रत्येक व्यवहार में समेटे हुए है। हमारा अपना अप्पू है जो केवल विरक्त नहीं है, वह अपने विरोधों और वितृष्णाओं में उन सब मूल्यों की वापिसी की पुकार है जो या तो खो गए हैं, या होने चाहिएं। अपने सामान्य कथा-कलेवर में एक छोटा सा विश्वसनीय उपन्यास है 'टूटने के बाद'। विमला और अप्पू कहां भूलते हैं।

पिछले बीस वर्षों में कुछ अच्छे उपन्यास आए हैं जिन की सार्वजानिकता उन्हें सार्वभौमिक भी बनाती है। अगर उन का अनुवाद ठीक ठाक हो सके तो विश्व के पाठक उन में वही नया अनुभव देखेंगे जिस की बात हेमिंग्वे करते हैं। हालांकि उन में से कुछ कृतियां सीमित क्षेत्रों और जनसमुदायों पर आधारित हैं, कुछ स्त्री अस्मिता के प्रश्नों पर, कुछ ऐतिहासिक विशेषकर 1857 का संग्राम व किसानों के संघर्ष पर, कुछ आत्मकथ्यात्मक उपन्यास भी हैं। 'सूत्रधार' जैसे जीवनी पर आधारित उपन्यास भी हैं। इन में से कुछ इस समयांश की साहित्यिक उपलब्धियां हैं जिन की खूब चर्चा हुई, होनी भी चाहिए।

चित्रा मुद्गल का आवां उन्हीं में से एक विशिष्ट अनुभव जगत को खोलता हुआ कई प्रश्नों से एक साथ जूझता बृहत उपन्यास है। The Old Man and the Sea का एक ही आत्मालाप उस की त्रासदी का सूत्र बन कर प्रसिद्ध हो गया। "I went too far out.' आवां के कुछ मुख्य चरित्रों की त्रासदी भी जीवन में कुछ अधिक दूर निकल जाने की त्रासदी है। विशेषतौर पर नमिता पांडे की त्रासदी। लेकिन उस का किनारे लगना भी वहीं से पैदा हुआ है। नमिता का जगह जगह अचानक शुरु हो जाने वाला एक अनायास आत्मालाप भी है जो थोड़ी देर के लिए सब कुछ स्थगित करते हुए पानियों में झांकने की कोशिश जैसा है। अन्ना साहिब के अकेले कमरे में उन की शारीरिक उत्तेजना हाथों के चप्पुओं से शांत करना, एक मगरमच्छ से लड़ कर हारना भी है और उस अनुभव को पीछे धकेल कर आगे बढ़ने की निस्तेज, निरस्त्रता भी। उसी व्यक्ति की मृत्यु के समाचार पर इतना मानसिक आघात उस व्यक्ति से बंधे सरोकारों और आदर्शों की हत्या का आघात। उसके जीवनार्थ का प्रतीक जैसे समाप्त हो गया। अन्ना साहब का घिनौनापन सामने आने पर भी उन का प्रभाव कहीं इतना गहरा है कि उनकी मृत्यु का समाचार ईश्वर की मृत्यु के समान है। आघात ऐसा कि जैसे पैदा होने वाला बच्चा इस ईश्वरविहीन दुनिया में आने से इन्कार कर देता है। गर्भपात हो जाता है।

'...उसने होंठ भींच लिए हैं। हठात उसे लगा कि उसके कूल्हों से लहर भरता सा पीड़ा का बवंडर उठा, उसे ऊंचे और ऊंचे तान उसने सहसा ज़मीन पर पटक दिया। किसी तरह वह अपने को घसीटती बिस्तर तक लाई। चीख रोक नहीं पाई ....'

नारी अस्मिता का प्रश्न यहाँ एक चुनौती बन कर पेश नहीं आता। वह ज़ेहन के किसी कोने में अलग से जलती हुई चिंगारी न हो कर जीवन के पूरे अलाव का ही हिस्सा है। संजय कनोई का विवाहित होना एक बात है जो सुविधाजनक तर्कों और कामनाओं के नीचे दब जाती है। लेकिन नारी अस्मिता का आदिम प्रश्न तरह तरह से विवाहित, पारिवारिक परिस्थितियों में भी अनेक रूप से आता है। कबीलाई व्यवस्थाओं से लेकर आज की वैज्ञानिकी भी अस्मिता के इस प्रश्न को उपभोक्तावादी दृष्टि से ही देखने की आदी है। मूल बात यही है कि अनुभव जो एक स्थिति या घटना की उपज नहीं होता, जो एक संचित पूँजी की तरह होता है, जो अन्ततः हमारी दिशाएं भी निश्चित करता है, वही नमिता पांडे को आख़िर मुक्त भी करता है। किशोरी बाई की झोपड़ी में जा कर रहने का निर्णय जहाँ पैदा होता है, जिस लड़ाई के प्रतीक उस के पिता हैं, अन्ना साहिब हैं, उसी लड़ाई का हिस्सा बन कर जीने के निर्णय से अधिक कुछ भी स्वाभाविक नहीं है। लेकिन संजय कनोई अगर अपनी धूर्तता को जारी रखता और एकदम क्रोध में आकर गालियां न बकता तो नमिता किशोरी बाई की खोली में कुछ देर बाद पहुंचती। ऐसे प्रश्नों से हमारा अस्मिता पक्ष हमेशा ही घिरा रहता है।

उपन्यास में मानसिक और शारीरिक स्तर पर बहुत कुछ घटता है। यात्रा में बोझ की तरह हमेशा साथ रह जाने वाली घटनाएं भी काफी हैं। नमिता के पिता और किशोरी बाई का सम्बन्ध उपन्यास की एक प्रिय दुर्घटना है जिस की पीड़ा किशोरी बाई, देवी शंकर और अन्ततः नमिता के लिए भी शक्ति का स्त्रोत बनती है। फुलझड़ियों की तरह आ आकर बुझ जाने वाले कितने ही पात्र हैं, जिनका फुलझड़ी जितना ही जश्न काफी है। हालांकि उसी जश्न में चेहरों पर मुखौटे चढ़ते भी हैं, उतरते भी हैं। लेकिन सुनंदा और सुहैल का सम्बन्ध उन जश्नों में शामिल नहीं है। यह सन्दर्भ स्त्री अस्तित्व में प्रेम के अनिवार्य तत्व को उपभोक्ता की शर्तों पर पूरा न उतरने की त्रासदी है। धर्म परिवर्तन का प्रश्न न प्रथम है, न अंतिम।

ट्रेड यूनियन की गतिविधियों के कलुष, पाखण्ड, लालच, महत्त्वाकांक्षाएं, अन्तर्विरोध उस जिस्म को बीमारियों की तरह हैं जिस का बेहद दुरुपयोग किया गया, लेकिन उस शरीर के पीछे छिपा हुआ आदर्श अपनी जगह अछूता है जो नमिता पांडे जैसे बहुत दूर निकल जाने वाले लोगों को भी अपनी तरफ़ लौटाने में हमेशा समर्थ रहेगा।

ट्रेड यूनियनों की सारी कमज़ोरियां समाज की उन्हीं गैर लोकतांत्रिक परम्पराओं से जुड़ी हैं जिन की वजह से बाकी संस्थाएं भी खोखली हैं और अपराधीकरण से मुक्त नहीं हैं। फ्रांस तथा अन्य आंशिक रूप से समाजवादी सिद्धाँत को मानने वाले देशों में ट्रेड यूनियन का स्वरूप वैसा नहीं है। वहाँ कोई एक व्यक्ति इतना बड़ा नहीं होता कि संस्था सिर्फ़ उस के नाम से जानी जाए। पदाधिकारी के अपने अधिकार अवश्य होते हैं लेकिन बाकी सदस्यों से मीलों ऊपर वे नहीं होते। हमारे यहाँ समाज में कदम कदम पर हीरो हैं। परिवार में भी हीरो हैं। अब वह ढांचा टूट रहा है। हमारी Formal या Informal ट्रेड यूनियन्ज़ का इतिहास बहुत पुराना है, हमारी लगभग सभी राजनैतिक पार्टियों से अधिक पुराना। 1918 से 1923 के बीच कई यूनियनें बनीं, Spinners और Weavers Union बनीं। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ही अहमदाबाद की हड़ताल सत्याग्रह जैसा रूप ले गई। 1926 में एन.एन. जोशी के प्रयत्नों से ट्रेड यूनियन कानून पास हुआ और All India Trade Union Federation बनी। आज़ादी का समय आते तक चार राष्ट्रीय स्तर की ट्रेड यूनियनें थीं। अब तो दर्जनों हैं। इतने लम्बे ट्रेड यूनियन के इतिहास में जो भी राजनीतिक और सामाजिक कमज़ोरियां थीं, अंग्रेज़ों के समय की Push and Play की कार्य पद्धति थी, सब की सब इन संस्थाओं को विरासत में मिली। ट्रेड यूनियनों की कार्य प्रणाली में पारदर्शिता नाम की कोई चीज़ कभी नहीं रही। मिल मालिकों या साहबों से क्या बातचीत हुई, आम सदस्यों को कुछ स्पष्ट नहीं होता। जिस भी राजनीतिक दल से वे सम्बन्धित होती हैं, उन्हीं की नीतियों का अंधानुसरण करती हैं। इन सब बातों का ब्यौरा उपन्यास की कथावस्तु का हिस्सा नहीं बन सकता, लेकिन पवार के माध्यम से इस लौह दुर्ग की भीतरी बुनावट और नेताओं की दोगली नीति काफी हद तक सामने आती हैं।

'सांप सीढ़ी के खेल में अन्ना साहब मान कर चल रहे कि उनकी रणनीति बड़े कौशल से मेरा उपयोग कर रही। समय बताएगा, कौन किसका उपयोग कर रहा। हाथ बहुत लम्बे हैं उनके, मानता हूँ। मिनटों में सूंघ लेते हैं बेदाग छवि को धूमिल करने वाली लिखावट।'

पवार एक अविस्मरणीय चरित्र है जो बेहद कुण्ठाग्रस्त होते हुए भी बेहद खुला, मुँहफट और वास्तविकताओं में जीने वाला पुरुष है। अन्ना साहिब के प्रति केवल वही भक्तिभाव से बोझिल नहीं है। उन की महत्त्वाकांक्षाओं का भण्डाफोड़ वहीं करता है।

'बह गया पानी स्वयं अपने उद्गम की ओर नहीं पलटता। मगर, उद्गम से उसका नाता नहीं टूटता। तीस पैंतीस वर्षों से सांप सीढ़ी के खेल में अन्ना साहब श्रमिक राजनीति कर रहे - चूनाभट्‌टी से लेकर मुलुंड तक। बदल गई उनकी झोपड़ियां महलों में? मात्र सार्वजनिक नल और सार्वजनिक संडास हासिल करने के .....। दस खोली के पीछे एक संडास और एक नल!'

दूसरे पात्रों का आईना भी वह है। उसका एक लम्बा दकियानूसी वक्तव्य बहुत आकर्षक बन पड़ा है जहाँ वह अपनी धूर्तता से स्त्री को वही पुराने ढर्रे पर घर में रह कर अपने सनातन फर्ज़ पूरे करने की वकालत करता है। यह एक मारक व्यंग्य है नमिता की स्थिति पर, लेकिन गम्भीर मुद्रा में पेश किया गया है।

आवां उपन्यास की भाषा सारे विस्तार पर इस तरह छायी हुई है जैसे सब कुछ उस की छत्र छाया में घट रहा हो। लेकिन यह छत्र भी और छाया भी किसी आलोक को भीतर आने से नहीं रोकते। पात्रों की शक्ति, सजीवता और उनके गुह्यार्थ इस भाषा के आलोक में प्रकट होते हैं। लेकिन कई स्थलों पर यह भाषा पात्र को परोक्ष करते हुए विचार और भाव की तरह स्वयं को स्थापित करती सुनाई देती है। शायद यही कारण है कि मुख्य पात्रों की भाषा विचार स्थितियों में अक्सर स्तरीय हो उठती है। स्थानीय भाषा या लोक भाषा का प्रयोग वही पात्र करते हैं जो या तो स्तर में थोड़ा नीचे हैं या शिक्षित नहीं है। यह स्वाभाविक ही है। लेकिन अनौपचारिक या घरेलू वातावरण में यह स्तरीय विशिष्टता कहीं कहीं संवाद सुगम नहीं रह जाती। यहाँ इस विशिष्टता के दो अन्तः साक्ष्य हैं। एक तो वह स्थिति जहाँ पात्र की मानसिकता में विचार तत्परता हावी हो जाती है या आवेशित मनस्थिति में चरित्र की भीतरी विशिष्टता प्रखर हो उठती है। लेकिन सायासता और अनायासता दोनों में ही भाषा का आंतरिक तर्क (Logic), अचूकता और उन्मुक्तता आवां में मौजूद है।

आवां में स्थितियों और आत्मसंवादों की समय और स्थान के बीच आवाजाही की टेक्नीक कुछ पाठकों को असुविधाजनक लग सकती है। अचानक बीच में कोई और बात शुरु हो गई लगती है। लेकिन यह Parallel Undercurrent of Vocal Thoughtfulness की युक्ति अधिकतर रिक्त समय या स्थान की पूर्ति के लिए ही प्रयोग हुई है। वारगस योसा ने थोड़ी भिन्नता से अपने उपन्यास जैम क्रतममद भ्वनेम में इसका प्रयोग किया है। वहां यह Interlacing Dialogues के रूप में प्रयोग हुई है जो Flashback का आभास भी देती है। अलग समय और स्थान की दो अलग अलग वार्ताओं को वे एक ही वार्ता में पिरो देते हैं। ठीक तरह प्रयोग न किए जाने पर यह टेक्नीक थ्सीइंबा का आभास न देकर किसी विक्षिप्त (Psychotic) मनःस्थिति का आभास भी दे सकती है। आवां में इस का वही प्रभाव है जिसे हम अन्तःसाक्ष्य का मुखर होना कहते हैं। Vocalization of a Muted Inner Testimony.

इस मनःस्थिति को पाठक अपने भीतर सृजित कर सकता है या नहीं, इसी पर भाषा की स्थिति सापेक्षता निर्भर करती है। एक अतिरिक्त अनुभव का उपन्यास है 'आवां'। इस विषय पर इतनी गहन अन्तर्दृष्टि जिस तरह अपना साक्ष्य रचती है, वह एक अतिरिक्त कौशल और निष्ठा की मांग करता है। एक नई स्मृति रचता है यह उपन्यास। एक ऐसी समस्या को निर्णायक प्रबुद्धता के साथ उठाता है जिसे बहुत ही कम उपन्यासों में उठाया गया है। हमारे समय की एक विशिष्ट कृति आवां स्मृति में अटक जाती है।

◆◆

उपन्यास के स्वरूप और स्वभाव को विधा की चार सौ बरसों से अधिक लम्बी यात्रा के बाद किसी ख़ास नज़रिए तक सीमित करना कभी सफल नहीं हुआ। हर समय में उपन्यासों ने परिभाषित वृत्तों को लांघते हुए अपनी वर्चस्वता दर्ज की है। कभी कभी विस्फोटक होने की हद तक। सामाजिक संरचना का प्रत्यक्ष या परोक्ष उत्तरदायित्व उस तरह से उपन्यास नहीं ले सकता जिस तरह हम अपने चिन्तन और राजनीति के धरातल पर लेते हैं। हालांकि जो भी सामाजिक संरचनात्मक प्रयत्न साहित्यिक स्तर पर किए जा सकते हैं, हर समाज में पिछले पचास साठ सालों में साहित्यकारों ने किए। कला और साहित्य का जनतांत्रिक होना एक ज़रूरत बन गई। विशेष रूप से उन समाजों में जहां तेज़ी से बदलाव आ रहा था और जहाँ विमर्शों की बहुत ज़रूरत थी।

जो समाज जितने कम जनतांत्रिक थे, वहाँ साहित्य तथा अन्य कलाओं को उतना ही जनतांत्रिक होने की ज़रूरत महसूस हुई। जिन समाजों में इतिहास, खासकर निकट के इतिहास समकालीन के धुंधलके में खो से गए थे, वहां इतिहास की बात करना भी साहित्यिक कृतियों ने ज़रूरी समझा। राजनीति का स्वरूप रेखांकित हुआ। इस सब के बावजूद भी यह नहीं कहा जा सकता कि किसी कृति के बड़े होने की, कालजयी होने की, पाठकों में सम्मानित होने की कोई ख़ास शर्त हो सकती है, कोई ख़ास सामाजिक या राजनीतिक नज़रिया हो सकता है या कोई विशेष सरोकार हो सकता है।

अनुभव के भेस में विचारों का आना और बात है लेकिन किसी भी विचार का अखाड़ा उपन्यास नहीं बन सकता। ख़ास तरह का चिन्तन या जवाबदेही उस रूप में किसी रचनाकार पर आयद नहीं होती जिस के हम आदी बन गए हैं। उस से बेशुमार मात्रा में केवल छद्म ही पैदा होता है। ओढ़न ही ओढ़न सामने आती है। उसे उतरते भी देर नहीं लगती। रचनाकार की चिन्ता और प्रगाढ़ता अधिकतर स्मृति, परिस्थिति और जैविक संयोजन (Genetic Composition) का एक अविदित अनुपातिक मिश्रण है - जो उस कथातीत संभावना को जन्म देता है जिससे प्रेमचन्द भी पैदा होते हैं और नोबोकोफ़ भी। गोदान भी पैदा होता है और लोलिता भी। मादाम बावेरी भी, जो जीवन के उत्सव को सिर्फ़ बेचैनियों में जीने को अभिशप्त है। टॉलस्टाय की अन्ना भी, जहाँ बन्धन और मुक्ति आपस में गडमड हो कर जीवन और मृत्यु का अन्तर समेटते से लगते हैं।